सहजानंद शास्त्रमाला

सुख कहां

द्वितीय भाग

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी ''सहजानन्द'' महाराज

प्रकाशक

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास गांधीनगर,इन्दौर

Online Version : 001

प्रकाशकीय

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला सदर मेरठ द्वारा पूज्य वर्णीजी के साहित्य प्रकाशन का गुरूतर कार्य किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक **'सुख कहां? द्वितीय भाग'** अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहरजी वर्णी की सरल शब्दों व व्यवहारिक शैली में रचित पुस्तक है एवं सामान्य श्रोता/पाठक को शीघ्र ग्राह्य हो जाती है।

ये ग्रन्थ भविष्य में सदैव उपलब्ध रहें व नई पीढ़ी आधुनिकतम तकनीक (कम्प्यूटर आदि) के माध्यम से इसे पढ़ व समझ सके इस हेतु उक्त ग्रन्थ सहित पूज्य वर्णीजी के अन्य ग्रन्थों को http://www.sahjanandvarnishastra.org/ वेबसाइड पर रखा गया है। यदि कोई महानुभाव इस ग्रन्थ को पुन: प्रकाशित कराना चाहता है, तो वह यह कंप्यूटर कॉपी प्राप्त करने हेतु संपर्क करे । इसी ग्रन्थ की PDF फाइल http://is.gd/varniji पर प्राप्त की जा सकती है।

इस कार्य को सम्पादित करने में **श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास गांधीनगर** इन्दौर का पूर्ण सहयोग प्राप्त हुआ है। इस ग्रन्थ के प्रकाशन हेतु **श्री संजयजी शाह, सीएटल, अमेरिका** के द्वारा रु. 500/- प्राप्त हुए, तदर्थ हम इनके आभारी हैं। ग्रन्थ के टंकण कार्य में **श्रीमती मनोरमाजी, गांधीनगर** एवं प्रूफिंग करने हेतु **श्री सुरेशजी पांड्या, गोयलनगर, इन्दौर** का सहयोग रहा है — हम इनके आभारी हैं।

सुधीजन इसे पढ़कर इसमें यदि कोई अशुद्धि रह गई हो तो हमें सूचित करे ताकि अगले संस्करण (वर्जन) में त्रुटि का परिमार्जन किया जा सके।

विनीत

विकास छाबड़ा

53, मल्हारगंज मेनरोड़

इन्दौर (म०प्र०)

Phone-0731-2410880, 9753414796

Email-vikasnd@gmail.com

www.jainkosh.org

शान्तमूर्तिन्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहरजी वर्णी‘‘सहजानन्द’’ महाराज द्वारा रचित

आत्मकीर्तन

हूँ स्वतंत्र निश्चल निष्काम। ज्ञाता दृष्टा आतमराम।।टेक।।
मैं वह हूँ जो हैं भगवान, जो मैं हूँ वह हैं भगवान।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यह राग वितान।।
मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान।
किन्तु आशावश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान।।
सुख दुःख दाता कोई न आन, मोह राग रूष दुःख की खान।
निज को निज पर को पर जान, फिर दुःख का नहीं लेश निदान।।
जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम।
राग त्यागि पहुँचू निजधाम, आकुलता का फिर क्या काम।।
होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जग का करता क्या काम।
दूर हटो परकृत परिणाम, ’सहजानन्द’ रहूँ अभिराम।।
अहिंसा परमोधर्म

आत्म रमण

मैं दर्शनज्ञानस्वरूपी हूँ, मैं सहजानन्दस्वरूपी हूँ।।टेक।।
हूँ ज्ञानमात्र परभावशून्य, हूँ सहज ज्ञानघन स्वयं पूर्ण।
हूँ सत्य सहज आनन्दधाम, मैं दर्शन० ,मैं सहजानंद०।।१।।
हूँ खुद का ही कर्ता भोक्ता, पर में मेरा कुछ काम नहीं।
पर का न प्रवेश न कार्य यहाँ, मैं दर्शन० ,मैं सहजा०।।२।।
आऊं उतरूं रम लूं निज में, निज की निज में दुविधा ही क्या।
निज अनुभव रस से सहज तृप्त, मैं दर्शन० ,मैं सहजा०।।३।।

Contents

प्रकाशकीय....2

आत्मकीर्तन....3

आत्म रमण....3

श्लोक 1-2....5

श्लोक 1-3....7

श्लोक 1-4....11

सुख कहां

[द्वितीय भाग]

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहरजी वर्णी 'सहजानंद' महाराज

श्लोक 1-2

यादृक् सिद्धात्मनो तादग्रूपं निजात्मन: ।
भ्रान्त्या क्लिष्टस्तु संसारे स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।१-२।।

जिन्होंने अपने आत्मा को पा लिया है अर्थात् जैसा सहजसिद्ध स्वरूप अपना है उसको पा लिया है । केवल स्व स्वरूप जैसा है तैसा ही प्रगट कर लिया है अर्थात् जो केवल हो गये हैं, कर्मों का भी सम्बन्ध हट गया है, शरीर भी नहीं रहा है—रंग तरंग जिनमें नहीं है अर्थात् कषाय व स्पन्द जहाँ नहीं रहा उनका ही नाम है सिद्ध आत्मा । इनको निरखकर यह भव्य पुरुष अपने आत्मा का ध्यान करता है । वह प्रभु सिद्ध भगवान, जैसा उनका स्वरूप हैं तैसा ही निज आत्मा का स्वरूप है, पर आज क्या हो रहा है सिद्ध आत्मा व निज आत्मामें? आज के इस आत्मा में और प्रभु में महान् अन्तर है । सिद्ध आत्मा अनन्त सुखी है और यह आत्मा निरन्तर संक्लेश व क्लेश कर रहा है । क्या किसी क्षण यह जीव सत्य विश्राम भी करता है । बिल्कुल थक जाये दुनिया के काम फरता-करता, फिर भी वहाँ पर विपरीत क्लेश का श्रम कर रहा है विकल्प कर करके । यह सब क्लेश क्यों हो रहा है? आत्म विभ्रम से ।

कोई घर जल गया, गिर गया, हमारा क्या गया—हम सरककर दूसरी जगह बैठ लेंगे—हमारा क्या गया अथवा फिर बनवा लिया जायेगा—पैसा आना होता है अन्धाधुन्ध आता है, नहीं आना होता, यूँ ही निपट जाता है । घटना २-३ महीने की है । एक सर्राफ का विश्वासपात्र नौकर ११०००) रु० की थैली उठाकर भाग गया । जिनमें १०) रु० देने की भी उदारता नहीं थी उनको ११०००) रु० का नुक्सान हो गया । जब धन जाना होता है इसी तरह जाता है । आपको पता ही नहीं है यह धन निकलेगा तो कैसे निकलेगा? व्यर्थ में विकल्प कर करके दुःखी हो रहे हैं । सिवाय विकल्प के और कोई क्लेश नहीं है । माना कि परिवार के लोग बैठे हैं उन्हें खिलाना है । परन्तु यदि अच्छा न खिला सके तो उनका भाग्य । हम कौन करने वाले? विकल्प से दुःख कर रखा है । कोई धनी हो जाये, गद्दी पर बैठकर हुक्म चलाये, तो भी गरीब से कम विकल्प उसके नहीं रहते । अब और धन बढ़ाना है और इज्जत पाना है, बड़ी-बड़ी बाधायें हैं उनको दूर करना है । धनी को तो गरीब से भी ज्यादा विकल्प हो सकते हैं, इसलिए अधिक दुःखी है । यह सब अज्ञान का प्रभाव है ।

एक जोशी आटा माँगकर अपने घर वालों को खिलाता था । एक दिन एक संन्यासी ने कहा—कुछ तपस्या, धर्म ध्यान भी तो कर । उसने कहा—जब हम आटा ले जाते हैं तो घर के लोग खा पाते हैं । संन्यासी ने

कहा—क्या तू खिलाता है, चल मेरे साथ, १५ दिन का नियम ले । कर सत्संग-परिणाम । वह संन्यासी के पास रहने लगा—घर नहीं आया । ढूंढ़वा मचा । एक मसखरे ने कह दिया—उसे तो तेंदुवा ले गया, उसे खा डाला है, हाहाकार मच गया । सबने जान लिया कि मर गया, पड़ौसी इकट्ठे हुए, सबने विचार किया कि उसके स्त्री है, १०-११ बच्चे हैं इनका प्रबंध होना चाहिये । जिसकी अनाज की दुकान थी उसने ४-५ बोरा अनाज ला दिया, घी वाले ने एक टीन घी, कपड़े वाले ने २-३ थान कपड़ा, इस तरह से उसकी मौज से कटने लगी, पहले से बहुत अच्छी तरह । १५ दिन बाद जोशी ने कहा—महाराज ! घर देख आने दो । कुछ बच्चे तो मर ही गये होंगे । देख तो लूं कौन मर गया, कौन जीवित है? संन्यासी ने कहा—अच्छा, पहले छिपकर देखना, फिर घर में जाना । वह छिपकर गया, छत पर चढ़ कर देखा—घी की पकौड़ी चल रही थी, लड्डू खा रहे थे, बढ़िया कपड़े पहन रखे थे । उसने सोचा ऐसा मेरे रहते भी नही था । खुश होकर आंगन में कूद पड़ा । सोचा अब तो हम घर में आराम से रहेंगे । परन्तु स्त्री बच्चों ने जाना कि कोई भूत आ गया । ईंट, पत्थर, अधजली लकड़ी उसको मारने लगे । वह जान बचाकर भागा । आकर बोला—महाराज बड़ी दुर्दशा हुई । महाराज बोले अरे बेवकूफ जब वे मजे में हैं तो तुझे कैसे पूछेंगे? तू यहाँ धर्म ध्यान कर ।

भैया ! व्यर्थ में भार लाद रखा है बहुतों का । धर्म, न्याय नीति से कर्तव्य निभाते हुए जो बात गुजरे गुजरने दो । ऐसा ज्ञानप्रकाश निरन्तर बने । इस रीति से चलें । विकल्प करके भी सिद्धि नहीं । संसारी बात भाग्याधीन है और कल्याण की बात पुरुषार्थाधीन । हे नाथ ! हममें आपमें इतना अन्तर पड़ गया, हमारी तुम्हारी जाति एकस्वरूप है, कुछ अन्तर नहीं—जिस तत्त्व से निर्माण आपका हुआ उससे ही मेरा निर्माण किसी दिन हुआ नहीं, अनादि से ही उस तत्त्वमय सहजस्वरूप है । यह अन्तर सब भ्रम से हुआ है । हे प्रियतम ! अभी यहाँ बैठे ही बैठे समस्त पर को भूलकर कुछ भी अन्य मेरा नहीं साहस दृढ़ है ऐसा करके सबको भूल कर विश्राम से बैठ तो सिद्ध आत्मा की झलक यहीं पा लेगा । अन्दाज हो जायेगा कि सिद्ध प्रभु कैसे महत्वशाली हैं । सिद्ध का अर्थ है—जो सीझ गया वह सिद्ध । चावल सीझ जाता है । अर्थात् सिद्ध हो जाता है । अनेक विघ्न बाधाओं का मुकाबला करके कर्त्तव्य पूरा कर लिया, कर्त्तव्य सिद्ध हो गया । यूं ही ज्ञानभावना रूप परमतपश्चरण कर-करके इतने पर से विरक्त हो करके एक तन्तु मात्र से स्नेह न रखकर, केवल एक निज आत्मा की धुन में रहकर, इस परम तपस्या में रहकर अनेक संकट सहकर जब-जब यह आत्मा सीझ जाता है फिर कभी चोट संक्लेश नहीं सताते हैं । उसी आत्मा को सिद्ध कहते हैं । सिद्ध होने के आगे कुछ नहीं रहता करने के लिये, नई बात के लिये । सिद्ध का अर्थ है बिल्कुल अन्त तक चले जाना, जहाँ के बाद जाने का काम नहीं । जो-जो अत्यन्त अन्त तक चले गये हैं जिसके बाद जाना शेष नहीं और फिर उस जाने से कभी लौटना नहीं होता, उन्हें सिद्ध कहते हैं । जो कर्मों को जला चुके उन्हें सिद्ध कहते हैं।

प्रभुभक्ति में आत्मधन मिलेगा—पुत्र, मित्र, स्त्री, धन की भक्ति में आत्मधन बरबाद होगा । होते हैं कोई बिरले ज्ञानी संत पुरुष जो पाये हुए बड़े साम्राज्य को भी तुरन्त त्याग देते हैं । कोई अनोखी चीज तो उन्हें

मिली, अपूर्व आनन्द ही तो उन्हें मिला जिससे संतुष्ट होकर इस बेगार समागम को त्याग दिया । किसी भिखारी से कहो जो ४-५ दिन की मांगी रोटी रखे हैं झोली में कि तू इन्हें फेंक दे, तुझे बढ़िया भोजन दूंगा, मिष्ठान्न दूंगा, परन्तु वह नही फेंकता, उसे मिष्ठान्न का पता नहीं अथवा मिलने की आशा नहीं । ऐसे ही मोही जीव यह भव-भव के जूठे विषय-अपवित्र, विनाशीक, आपत्ति के कारणभूत अज्ञान के हेतुभूत इन जड़ समागमों को अपने उपयोग की झोली में भरे हुए भिखारी बना हुआ फिर रहा है । इसे कोई श्रीमान् कहता है (जो निरन्तर आश्रय करे उसे श्रीमान् कहते हैं) ज्ञानवान कहता है तू इस झोली में से असार विषयों को फेंक दे, तुझे सहज ज्ञानानन्द प्रकाश मिलेगा । उसे आशा ही नहीं इसलिए फेंकता नहीं । कैसा विचित्र भ्रम है ? जिसके कारण विकल्पों का क्लेश सहा जा रहा है ।

जैसा सिद्ध का स्वरूप तैसा मेरा रूप है । एक भ्रम का पर्दा ओट है । जिसकी ओट में हम नाटक कर रहे हैं । हिम्मत बने अन्तरंग की, हिम्मत ही क्या जब गलत रास्ते चल उठे हैं तो सीधे रास्ते पर पहुंचने के लिये हिम्मत का प्रयोग करना पड़ रहा है । हिम्मत क्या करना निज का निज में देखना, यह सीधा काम है । हिम्मत तो विभाव करने में द्वन्द्व फंद में करना पड़ती है । किसी को अच्छा बोलने में हिम्मत करने की जरूरत नहीं पड़ती, वह तो सीधा काम है । गाली देने में जरूरत पड़ती है हिम्मत की । दृष्टि तो अपनी, यह तो सीधा काम है । कुछ आत्मकल्याण तो कर या अपने आपको इसी तरह ही संसार में रुलाना इष्ट है । चार दिन को इस चांदनी में मायामयी पुरुषों में जो श्रम करेगा वह मर मिटेगा । थोड़ा-सा व्यवहारिक काल्पनिक नाता, इसके लिये इतना विकल्प का श्रम किया जा रहा है ।

हे आत्मन् ! अब भी न चेते तो कहां चेतने का अवसर मिलेगा? अपनी शक्ति को निरख, उससे ही नाता तांता लगा, अन्तरंग की रुचि रख, फिर कभी व्यवहार में जो कुछ करना पड़ेगा वह भी होगा, पर विधि पद्धति से होगा । नुक्सान कुछ नहीं है न ऐहिक नुक्सान, न पारलौकिक नुक्सान एक प्रभु-प्रभुशक्ति में । तू इन हजार लाखों के दिल में घुसने की कोशिश न कर । उस एक सिद्धप्रभु वीतराग प्रभु के निकट पहुँचने की कोशिश कर उस एक के निकट पहुंचने पर तुझे अपूर्व वैभव मिलेगा और उन लाखों के भी दिल में पहुंचने से तुझे क्लेश रहेगा । प्रभु स्वरूप को देख अपनी शक्ति को देख, प्रभु में शक्ति को देख, शक्ति में प्रभु को देख, अपनी शक्ति को देख, प्रभु में शक्ति को देख, खूब अदला-बदली कर मित्रता कर प्रभु से, समता का स्मरण करके एक रस बन जा तुझे अपूर्व आनन्द मिलेगा । प्रभु की तरह अपनी शक्ति को निरख कर अपने में अपने लिये अपने आप सुखी होगा । मेरे जीवन का यही एक निर्णय है, यही अपने जीवन का पक्का निर्णय बना ले ।

श्लोक 1-3

विश्वतो भिन्न एकोऽपि कर्ता योगोपयोगयो: ।

रागद्वेषविधातासम् स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम् ।।१-३।।

अपने आत्मा की जब यथार्थ सुध होती है उस काल में गुरुजनों के प्रति एक अपूर्व भक्ति उमड़ती है, जिनके चरण प्रसाद से यह तत्त्व प्राप्त हुआ है । जिस ज्ञान में अब शान्ति संतोष आ गया है ऐसा ज्ञान प्रकाश जिन गुरुजनों के चरण प्रसाद से प्राप्त हुआ है उन गुरुजनों के प्रति उसकी कितनी मान्यता हो जाती है, उसकी तुलना यहाँ कैसे की जाये किसी परिजनादि से? मोही पुरुष भी स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, धन आदि को इतना ही मान पाते जितना यह आत्मा निर्मोही गुरुजनों का उपदेश पाकर उनको बहुमान देता है और उन गुरुजनों का स्मरण करता है । उसके हर्ष का रोमांच भी सर्व शरीर में प्रकट होने लगता है । गुरुजनों के उपदेश से हमें क्या मिला? तुम अपने को पहिचानो, अपनी ओर झुको अपने आत्मदेव को प्राप्त कर सको तो कोई संकट नहीं आयेगा, क्लेश नहीं आयेगा ।

वास्तव में भी तो भैया ! अब भी तो संकट नहीं है । हम और आप, जब अपने में न समाकर बाहर में दृष्टि देते हैं तो विकल्प होने लगते है । विकल्प ही श्रम है विकल्प ही क्लेश है । क्लेश और कुछ नहीं । इष्ट वियोग हो गया, उस इष्ट के मरने से क्लेश नहीं हुआ बल्कि उसका ध्यान कर-करके उपयोग में जो विकल्प हुआ वह क्लेश है । किसी अनिष्ट का संयोग हो गया—अनिष्ट क्या अनिष्ट कोई नहीं, तुम अपनी कल्पना में विरोध भाव रख रहे हो, इसलिए अनिष्ट दिखता है । वही विकल्प पीड़ित कर रहा है, अनिष्ट का संयोग पीड़ित नहीं कर रहा है ।

शरीर में वेदना हुई—क्या करे ? शरीर की वेदना में तो दुःखी होना ही पड़ता है क्योंकि उसका तो मुझसे घनिष्ट सम्बंध है । परन्तु भैया तू क्या नहीं जानता कि जिनको भेद ज्ञान दृढ़ हो जाता है उनको शरीर की वेदना में भी विकल्प क्लेश नहीं होता पुराणों में बहुत उदाहरण मिलते हैं । गजकुमार के सिर पर मिट्टी की डोल बाँधकर उपले कोयले जला डाले, ज्वाला उठने लगी । इससे बढ़कर शरीर की व्यथा की क्या कल्पना की जाये? एक मुनिराज को उनका ही एक प्रेमी, जब वह किसी कारण से उनका विरोधी बन गया, मौका पाकर चाकू से शरीर की खाल छीलकर नमक छिड़कने लगा । किसी को कोल्हू में डालकर पेल दिया—किसी को उपलों के घर में बन्द करके आग लगा दी, इससे अधिक शरीर की वेदना और क्या हो सकती थी, ऐसी स्थिति में भी वे विचलित नहीं हुए, क्लेशित नहीं हुए, यह सब भेदज्ञान का ही प्रताप है । ज्ञानी (भेदविज्ञानी) पुरुष शरीर को अपने से न्यारा जानता है । कोई शरीर की वेदना को जानते होंगे, परन्तु उपयोग में लाते नहीं अथवा न भी जान रहें हो, ऐसे भी महापुरुष हुए हैं, वे अपने में ही लीन रहते हैं । और भैया वर्तमान में भी देख लो । कोई ज्ञानी पुरुष १०४ डिग्री के बुखार में भी आत्मदृष्टि करता हुआ नजर आता है । उसी बुखार में कोई अधिक दुःखी, कोई कम दुःखी दिखता है । अपने को सुखी करने का मात्र उपाय भेद विज्ञान है—शरीर भिन्न है। मैं भिन्न हूँ । शरीर को वेदना होती, होने दो—मुझे उससे क्या? मैं आत्मा तो एक अविच्छिन्न पृथक् हूं, ऐसा भान होता संकट के क्लेश के मेटने का उपाय है ।

यहाँ हम सब एक ही समान हैं । सुख दुःख का उदय, जन्म मरण-शांति अशांति हम आप सबको एक ही ढंग से होती हैं । यह नहीं कि दुकानदार का दुःख और ढंग से होता हो, त्यागी को और ढंग का, राजा को किसी और ढंग का और भिखारी को किसी और ढंग का । नहीं—सबकी यही एक क्रिया है । परदृष्टि का विकल्प किया बस दुःख हुआ, सबका एक ढंग हैं । शांति पाने का भी एक ही ढंग है—आत्मदृष्टि की, अपने उस सामान्य तत्त्व पर झुकाव किया विकल्प बाधायें दूर हुई, शांति प्राप्त हुई । अपना यहाँ दूसरा कोई सहाय नहीं । पुण्य से वैभव पाया, थोड़ी कला पा ली, यह भी पा लिया, वह भी पा लिया, पारिवारिक आराम भी पा लिया । लेकिन यह सब क्या है? यह तो एक बहकाने के लिये अथवा यूं समझो अधिक कष्ट में डालने के लिये बहकावा मात्र है । इस ओर दृष्टि रखने पर प्रकाश नहीं मिलता, शांति की पात्रता नहीं आती, मोह से जन्म मरण बढ़ाना पड़ते हैं ।

हे आत्मन् ! अपने को अपने लिये विश्व से एक न्यारा समझो—मुझे कौन पहचानता है? आप सब अपने बारे में सोचने लगो—सभी लोग इस मूर्ति को निरखकर इस मूर्तिमान से इस पर्याय से व्यवहार कर रहे हैं । कोई चेतनतत्त्व मुझ चेतन तत्त्व से व्यवहार करता नहीं । यह सब अन्य चेतन गड़बड़ कर नाना रूपों में होकर इस मायामयी से व्यवहारत: व्यवहार करते हैं, मुझसे कोई नहीं करता । जो मेरे इस वास्तविक स्वरूप को जानता है वह व्यवहार नहीं कर सकता । उसकी परिणति तो निराली बन जाती है । मुझसे व्यवहार क्या करेगा? ठीक है ना, मेरा पहिचाननहारा दूसरा न कोई है ।

अपरिचित पुरुषों में कोई अपना नाम नहीं चाहता । अपरिचित लोगों में अपमान का बुरा नहीं मानना है । जहां कोई पहिचानने वाले २-४ पुरुष भी देख रहे हों वहाँ कोई उसका अपमान कर दे उसे बड़ा बुरा लगता है । पर देख तो सही तेरा पहचानने वाला यहां कोई एक भी है क्या? कोई नहीं । यदि तुझे कोई वास्तव में पहिचानने लगे तो वह खुद का हो जाये । छोड़ो पर का विकल्प, अब तो अपनी ओर आओ ।

मैं विश्व से न्यारा एक अद्वैत निजस्वरूपमात्र-ज्ञानमात्र हूँ, ऐसी दृष्टि करना अमृतपान करना है । लोग अमृत के लिये इधर-उधर भटकते हैं । यदि बाहर में अमृत मिल जायेगा तो होगा कैसा? क्या दूध, पानी, शर्बत जैसा, जिसको पीने से अमर हो जाये । क्या लड्डू, पेड़े कचौड़ी जैसा जिसको खाने से अमर हो जाये या पेड़ पर के आम, जामुन आदि जैसे जिनका तोड़कर खाने से अमर हो जाये । कुछ कथाओं में बताया कि अमुक को अमर फल मिला, परन्तु यह सब कोरी बकवास है । बाहर कहीं अमृत नहीं मिलेगा, अमृतपान तो अपनी आत्मा की दृष्टि में है, विविक्त, अपने स्वरूप में तन्मय, निर्विकल्प, ज्ञानप्रकाश, अपने आपकी दृष्टि में है, विविक्त अपने स्वरूप में तन्मय, निर्विकल्प, ज्ञानप्रकाश, अपने आपकी दृष्टि में है।

अमृतपान करना है तो सोचो मैं विश्व से न्यारा एक अद्वैत अखंड चेतन तत्त्व हूँ । मेरा कोई नहीं न मैं किसी का । लेकिन देखिये भैया ! अगर, मगर, तगर, परंतु, किन्तु, लेकिन ये शब्द तख्ता पलट देते हैं। अभी कुछ बहुत अच्छी बात देखने सुनने समझने में आई थी, लेकिन-लेकिन ने सब मजा किरकिरा कर

दिया, यह लेकिन अपने स्वयं के घर से निकलकर बाहर खींचे लिये जा रहा है। लेकिन ऐसा क्यों हो रहा है? यह लेकिन मुझे यूं जबरदस्ती बाहर लिये जा रहा है, क्योंकि मैं अपने घर में मजबूती से स्थित नहीं हूं। इसी से यह पीड़ित हो रहा है।

अहो, यह आत्मा क्या बन रहा है? योग उपयोग का कर्ता बना हुआ है। उपयोग तो कुछ न कुछ रहता ही है, फिर इसे लेकिन का शिकार क्यों बनाया? नहीं-नहीं, ऐसा नहीं। योग उपयोग रहो, कोई हर्ज नहीं। परन्तु मैं योग उपयोग का कर्ता बना हुआ हूं, यह दु:ख के कारण है। मैं विकल्पित होकर उपयोग का कर्ता हुआ, इसलिये मैं ही रागद्वेष का विधाता बन रहा अब तक। कोई समझते हों ये बहुत प्यारे हैं। स्त्री, पुरुष, कुटुम्बी बहुत अधिक प्रिय जंच रहे हों, लेकिन यहाँ उपयोग बाहर ही में तो भटक रहा, वहाँ क्लेश ही तो हुआ। दुर्गति का कारण ही तो हो जायेगा। मैं रागद्वेष का कर्ता बना रहा, उनका विधाता बना रहा। अब मैं इस बाह्यदृष्टि को त्यागकर विविक्त एक ज्ञानमात्र अपने आप ज्ञानस्वरूप का भान करके अपने में अपने को देखूं, निरखूँ, पहिचानूं तो सुख ही है, शान्ति ही है । मुझे अन्य पर में विश्वास नहीं रहा कि मुझे कोई सुखी कर देगा । मैं किसी से सुख की भीख नहीं माँगता । हे प्रियतम ! तुम ऐसी दृष्टि बना लो तो उपद्रव नहीं रहेंगे । सबसे विविक्त अपने स्वरूप में तन्मय ज्ञानानंद मात्र अपने आत्मा की दृष्टि में लग जाओ तो वहां विकल्प खत्म हो जायेंगे, उपद्रव नहीं रहेगा ।

भैया ! कोई कुछ कहता है तो वह अपने विकल्प का ही तो कर्त्ता बन रहा है । सब चेतन अचेतन जिस प्रकार से परिणम रहे है वे अपनी-अपनी सत्ता रखने के लिये परिणम रहे हैं, अपने उत्पाद, व्यय ध्रौव्य रूप चल रहे हैं, मेरा कुछ नहीं कर रहे । मैं अपने से हटकर बाह्य की ओर जाता हूं । तो अपने विकल्प के कारण अपने को पीड़ित कर लेता हूँ । सावन की तेज वर्षा में जहाँ बिजली चमक रही हो, ओले पड़ रहे हों ऐसी कठिन स्थिति में कोई कुटी बहुत पुष्ट मिल जाये तो उस कुटी में बैठकर कौन यह चाहेगा कि उसके बाहर थोड़ा डोल तो लूं । यूं ही अपने आपमें आपका निर्णय करो—द्वन्द्व फंद से न्यारे इस निज तत्त्व के अवलोकन की कुटी हमने पाई है जिसके बाहर सब ओर द्वन्द्व-फंद संकट हैं, चारों ओर अनेक उपद्रवों की वर्षा हो रही है तब इस निर्विघ्न आत्मकुटी से बाहर निकलना श्रेयस्कर नहीं होगा ।

जमुना के बीच ऊपर चोंच निकालकर कछुवा तैर रहा है २० पक्षी उसकी चोंच पकड़ लेना चाहते है वह घबड़ा जाता है, परेशान हो जाता है । कोई उसे समझाता है अरे क्यों घबड़ाता है? तुझमें तो एक भारी कला है जो इस दु:ख से बच जाये। चार अंगुल पानी में डूब जा, वह तेरी सहज कला है। हे आत्मन् ! तू भी अपनी उपयोगरूपी चोंच को उठाकर फिर रहा है । ये संयोग-वियोग मान, अपमान आदि नाना प्राणी तुझ पर झपट रहे हैं तेरी चोंच को पकड़ना चाहते हैं । तू घबराता क्यों है? तेरे में तो एक अपूर्व कला ऐसी है जिसके प्रयोग होने पर सैकड़ों हजारों संकट भी नष्ट हो जायेंगे। अपने ज्ञान-स्वरूप सरोवर में मग्न हो जा, उपयोग की चोंच को ज्ञानस्वरूप में डुबा ले, एक भी संकट नहीं रहेगा। विश्व से भिन्न एक निज तत्त्व की दृष्टि करके

हम सभी अपने में मग्न होकर सुखी हो सकते हैं । हमने अनेक समागम पाये—जैन धर्म मिला, जैन वचन मिले, बुद्धि बल मिला, ये सब समागम सफल हो जायेंगे, यदि हम अपना स्वाधीन स्वरूपदृष्टि का कार्य कर सकें।

श्लोक 1-4

न करोमि न चाकार्षम् न करिष्यामि किञ्चन।
विकल्पेन मुधा वस्त्र: स्यां स्वस्मै स्वे सुखी स्वयम्।।१-४।।

प्रत्येक पदार्थ सत् है और वह प्रतिसमय नवीन-नवीन परिणति को रखता हुआ, पिछली परिणति को विलीन करता हुआ चलता रहता है । यह पदार्थ का स्वभाव है । इस स्वभाव के कारण पदार्थ का कोई नुक्सान नहीं है । बल्कि इससे उसका स्वरूप लाभ ही है । यदि पदार्थ नवीन अवस्था धारण न करे तो उनका अस्तित्त्व ही न रह सकेगा, पर्याय का उत्पाद न हो तो अस्तित्त्व नहीं रह सकेगा । इसी प्रकार पूर्व पर्याय का व्यय न हो तो काम नहीं चलेगा । पर्याय की सन्तति रहना ही ध्रुवता है । यही पदार्थ में उत्पादव्यय ध्रौव्य है । इसी को सत् रज और तम भी कहते हैं । जो धौव्य है वे ही सत् है । जो उत्पाद है वही रज है । जो व्यय है वही तम है । यह तीनों तत्त्व पदार्थ में ऐसे गुम्फित हैं, जिसके कारण हम कह सकते हैं ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों शक्ति निरन्तर है । ऐसा नहीं कि पहले ब्रह्मा हुआ हो, फिर विष्णु, फिर महेश, ऐसा नहीं है । परन्तु ये तीनों शक्ति अनादि निधन हैं, प्रत्येक पदार्थ में हर समय पायी जाती है । पदार्थ अपनी नवीन पर्याय उत्पन्न करे उस शक्ति का नाम ब्रह्मा है । पूर्व पर्याय विलीन करे इसका नाम महेश है । यों चलता हुआ भी पदार्थ सदा सुरक्षित रहे इस शक्ति का नाम विष्णु है ।

पदार्थ के स्वरूप रहस्य को आज का राष्ट्रीय झंडा भी दुनिया को दिखला रहा है । उत्पाद का स्वरूप हरे रंग से दिखलाया गया है । लोग भी कहते हैं कि यह घर हरा-भरा है, चूहों की तरह बच्चे भागे फिरते हैं । पदार्थ में नवीन-नवीन पर्याय उत्पन्न होती रहती है इसलिये पदार्थ हरा-भरा है । विनाश का वर्णन लाल रंग से किया गया है । लाल, पीला आपसी दोस्त हैं । हरा, पीला रंग किसी रंग पर नहीं चढ़ता । सफेद पर ही चढ़ा करता है । इसीलिये सफेद रंग बीच में है । यह सूचित करता है कि इस ध्रौव्य स्वरूप से ही उत्पाद व्यय लगे हुए हैं । इस तरह राष्ट्रीय झंडा बतला रहा है कि सब पदार्थ सुरक्षित है । किसी का समूल नाश नहीं होता ।

पुद्गलों के उत्पाद व्यय में हम कुछ हानि नहीं तक रहे । आज काठ है कल जल गया, राख हों गया—कुछ नुक्सान तो नहीं हुआ । न ही उस पदार्थ ने कोई नुक्सान माना, न उस काठ ने अपनी तड़फन दिखाई । यूं ही अपने में समझिये । जो कुछ होता है मेरे स्वरूपलाभ के लिये होता है, लेकिन हानि के लिये नहीं । अचेतन में तो कोई अटेक नहीं हुई, फिर चेतन में क्यों होने लगी? मैं जिस रूप परिणम रहा हूँ परिणमने दे

। क्यों कष्ट मानता है? बताया तो यह गया था कि उत्पाद व्यय ध्रौव्य पदार्थ का स्वरूप लाभ के लिये है, परन्तु यहाँ हानि क्यों हो रही? यह झगड़ा चेतन के साथ है । जहाँ द्वैत पर दृष्टि हुई, दूसरे से नाता रखा तो दुःख हुआ । अपने स्वरूप में रहता तो ऐसी कोई आपत्ति नहीं थी । पर यह तो सबका सरताज बनना चाहता है । विकल्प उठाता, अद्वैत स्वरूप से हटकर द्वैत स्वरूप में पहुँचता, इसी कारण आज दुर्दशा हो रहीं है चेतन की ।

हमारी दुर्दशाओं का बीज है कर्तृत्वबुद्धि । मैं कर्ता हूँ, मैंने किया, मैं कर दूँगा, कर्तृत्व की बीमारी सन्तोष नहीं लेने देती । सब कुछ कर चुके पूर्व विकल्प के अनुसार, लेकिन उस कर चुकने के बाद नई बात आ जाती है । और करना है, और करना है, और करना है मुझे करना है मुझे करना है यह धुन तो बनी । पर मुझे मरना है, मरना है, मरना है यह सुध नहीं रही । एक रुई धुनने वाला पुरुष विदेश गया, जब लौटा तो पानी के जहाज से लौटा । जहाज में कोई सवारी नहीं थी, अकेला था । जहाज में हजारों मन रुई भरी हुई थी । रुई को देखकर धुनिया विकल्प करने लगा कि कहाँ तक रुई धुनि जायेगी? यह हमको ही तो धुननी पड़ेगी, दिल पर असर होने लगा, सिर दर्द होने लगा । विकल्प हुआ, विकल्प बढ़ने लगे, हरारत होने लगी, घर जाते-जाते तेज बुखार हो गया । हाय, रुई मुझे ही धुननी पड़ेगी । डाक्टर वैद्य आये, लेकिन कोई इलाज न कर सका । एक चतुर आदमी बोला मैं चिकित्सा करता हूँ । तुम सब लोग चले जाओ । एकांत में इलाज करूँगा । सब चले गये, बातचीत होने लगी । भाई तुम किस समय से बीमार हो? उसने सारी कथा सुनायी । विदेश गया था, जहाज में आया था उस जहाज में एक भी आदमी नहीं था, मैं अकेला ही था,.... तुम अकेले ही थे हाँ आदमी तो कोई नहीं था हाँ हजारों मन रुई भरी थी उसमें । चतुर आदमी समझ गया सब रहस्य । बोला—तुम जिस जहाज में आये, अरे वह जहाज तो अगले बन्दरगाह पर आकर जल गया नष्ट हो गया, उसमें जितनी रुई थी जल गयी खाक हो गयी । बस धुनिया को चैन आई । भीतर तो विकल्प मचा था वह समाप्त हो गया । अब चित्त में समा गया मेरे करने को कोई काम नहीं रहा । मैं कृतकृत्य हो गया ।

भैया ! सुख करने का नहीं होता है । सुख होता है इच्छा न रहने का । मुझे करने को कुछ नहीं पड़ा, मैं कृतकृत्य हूँ । खूब सोच लो—यही तत्त्व मिलेगा शान्ति हर एक परिस्थिति में । आपके पास किसी मित्र की खबर आयी चिट्ठी द्वारा—आज हम १० बजे की गाड़ी से आ रहे हैं स्टेशन पर मिलना । बस विकल्प हो गया । मित्र से मिलने स्टेशन पर जाना है । प्रत्येक काम २-२ घंटे जल्दी कर रहा है । मुझे मित्र से मिलना है । विचार ने उसे बेचैन कर दिया, स्टेशन पहुँचा । गाड़ी लेट तो नहीं है?....१५ मिनट लेट । उदास हो गया । जब गाड़ी आयी, आंखें नचाने लगा, किस डिब्बे में मित्र है? डिब्बा मिल गया डिब्बे में जाकर मित्र से मिला । डेढ़ मिनट हो पाई, खिड़की से झांकने लगा—उतरना है । गाड़ी चल न दे । अरे भैया ! तुझे मित्र से मिलने का सुख हुआ तो उस सुख को क्यों छोड़ते हो? वास्तविकता यह है कि मिलने का सुख नहीं हुआ,

मुझे मिलने का काम भी नहीं रहा इस भव में शान्ति है ।

हम करने-करने के विकल्प से ही खेदखिन्न रहा करते हैं । मैं किसी परद्रव्य को नहीं करता, न मैंने किया और न मैं किसी पर का कभी कुछ कर ही सकूँगा यह मैंने ज्ञानस्वरूप मात्र जो छेद से छिदती नहीं, भेद से भिदता नहीं, पकड़ने से पकड़ा जाता नहीं, जलाने से जलता नहीं, बहाने से बहता नहीं, ऐसा यह मैं ज्ञानप्रकाश मात्र आत्मा पर में क्या करूँगा? यह आत्मा बस खुद का परिणमन ही कर सकता, अपने परिणाम ही बना सकता है । चाहे किसी प्रकार के बना ले । परिणमन स्वयं का स्वयं में होता है । मैं अपने में उत्पादव्ययध्रौव्य स्वरूप बना रहता हूँ, परन्तु परद्रव्य का कभी कुछ कर नहीं सकता । एक बार हिम्मत बनाकर, पर पदार्थों से डोर काटकर, अपने को अपने में लगाकर देखो तो, इससे सकल संकट मिट जायेंगे ।

हम भगवान की भक्ति करने आते हैं और अपने में प्रोग्राम बनाते और यह कभी नहीं सोचते कि भगवान ने प्रोग्राम बनाया था जिससे ये सुखी हुए । यह चिंतवन नहीं करते । भैया ! इसका नाम भक्ति नहीं । अफसर से, मिनिस्टर से, स्त्री से, पुत्र से क्या हम कम गिड़गिड़ाया करते हैं । यहाँ तो हम एक घंटा हो आते हैं, वहाँ तो २३ घंटा रहते हैं, भगवान ने अपने आत्मा की सुध ली थी, आत्मा के भानपूर्वक इन्द्रियों के ऊपर विजय प्राप्त की । वीतरागता आई, सर्वज्ञ बने । अब अनन्त आनन्दरस में लीन हैं, शुद्ध निर्दोष हैं। यही उत्कृष्ट स्थिति है। और यह हुये बिना जीव का निस्तारा नहीं है।

आत्मज्ञान की पदवी के पाये बिना जो हालत हो रही है वह किसी से छिपी नहीं है। सड़क पर भैंसों को जोता जाता गर्दन छिल गयी है, खून चू रहा है, जीभ निकल रही है। उस गाड़ी पर मनमाना बोझ लदा है । लाठी चाबुक की मार सह रहा है। गाड़ी वाले से उसकी शक्ति सौ गुनी है । पर विवश है वह, चल रहा है । यही दशा हम आपकी ही तो है । स्वरूप तो वही है । अब हमारा क्या कर्तव्य है? हमने यह दुर्लभ जैनशासन पाया, श्रावक कुल पाया जहाँ हिंसा का तनिक नाम नहीं । घर भी साफ सुथरा पाया जहाँ हिंसा कतई नहीं । मंदिर भी वैराग्य के वातावरण से युक्त साफ स्वच्छ रहा करता है इस कारण यह समझ में आता कि वहाँ हिंसा बिल्कुल नहीं है । इतना दुर्लभ श्रावक कुल प्राप्त करके विषयों में इस जीवन को खो दें तो मुश्किल से पायी हुई मणि को समुद्र में फेंक देना है ।

मैं किसी परद्रव्य को नहीं करता और न कभी कर सकूंगा, मैं तो व्यर्थ ही खिन्न हो रहा । अब अपने संकल्प विकल्प हटाकर अपने में अपने लिए स्वयं सुखी होऊँगा । लोग तो व्यर्थ में स्वावलम्बन की शिक्षा देते हैं । अपने आप अपने काम करो । दूसरे की आशा मत करो । यहाँ धर्म के प्रसंग में अनुपम स्वावलम्बन है। अपने आपको अपने आलम्बन में रखो । पर का आलम्बन न करे । पर को उपयोग-आँगन में मत लेटने दें तो एक भी संकट नहीं । यह मोही जिस धन वैभव परिजन को प्रिय समझता है वह तो आकुलता का साधन है, कुबुद्धि का कारण बन ज्ञाता है । देख तू अपना आप ही विधाता है, रक्षक है । स्वावलम्बन से ही

संकट का विनाश कर सकेगा । स्वावलम्बन को तजकर पर की आशा का भाव रखा कि दु:खी हुआ । इसलिये कर्त्तव्य के विकल्प हटाकर अपने स्वरूप में आयें, उसी की चर्चा करें, उनके निकट आयें, इस अपूर्व क्रिया से संकटों को दूर करें । सुख यही है ।

निर्विकार भगवान् सर्वज्ञदेव अथवा निर्विकारता की ओर ही बढ़ने वाले गुरुदेव का जब स्मरण हो जाता है तो इस भव्य पुरुष को उसी ओर लगन होती है । उसके नाते में सब कुछ वही है । निर्विकार प्रभु के ज्ञान में और निर्विकार निज स्वरूप के ध्यान में जो उसे आनन्द मिलता है उस आनन्द के लिये यह भव्य पुरुष तन, मन, धन को न्यौछावर करने के लिये सदैव तत्पर रहता है और उसकी यह दृष्टि रहती है कि निर्विकार गुरुओं के चरणों में अपने को समर्पित करके निर्वाध हो जाऊँ । जैसे कोई बालक चारों ओर से सताया गया हो, उसे एक ही उपाय नजर में रहता है—सुखी होने का, माता की गोद या पिता के निकट पहुँचना और किसी उपाय की बात सोचता भी नहीं । वह ऐसे ही संसार के बालकों पर, संसार के इन प्राणियों पर संकट आते हैं । उनमें से यह भव्य पुरुष अन्य कुछ भी बात मन में नहीं लाता, वह निर्विकार प्रभु के चरणों में अपने आपको अर्पित कर देता है । लो सर्व संकट समाप्त हो जाते हैं । जिसे भगवान की सर्वज्ञता के ध्यान की प्रमुखता हो जाये तो यह भव्य सोचता है कि हे प्रभु जो कुछ मेरा होना भविष्य में है वह सब आपके ज्ञान में ज्ञात है । लो अपने भविष्य के परिणमन के सोचने का भार क्यों लादू? यह सब भार प्रभु पर डाल देता है । उनके ज्ञान में ज्ञात तो है ही भार क्या डालना? अपनी चिन्ता, अपना भविष्य, अपना जो परिणमन उस सबकी जानकारी का भार प्रभु को दे देने से अथवा देना भी हैं—उससे प्रभु का बाल बांका नहीं हो सकता, क्योंकि उनकी मूल में वीतरागता है, वे उद्विग्न नहीं हो सकते । जो अल्प ज्ञाता है जानकार नहीं है वह पुरुष थोड़ी बात जानता है, अनेक विह्वलता में पड़ सकता है । विह्वलता का कारण राग है । मैंने अब तक अपने राग से बिंधकर नाना प्रकार की चेष्टायें की, मैंने किसी दूसरे का कुछ किया क्या? सबका भाग्य सबके साथ लगा है । मैं उनका कुछ नहीं करता । अत्यन्त भिन्न क्षेत्र में स्थित पर की बात तो जाने दो । जो अपने एक क्षेत्रावगाह में है इस शरीर का भी कुछ नहीं करता । यह बूढ़ा नहीं होना चाहता यह आत्मा अपने को जवान मनाने की ही इच्छा रखता है; पर बूढ़ा होना पड़ता है । इस शरीर पर मेरा अधिकार नहीं । तब परपदार्थों की बात तो दूर ही हो गई । मैंने इस स्थिति में भी राग में बिंधकर परिणमन अपने में चेष्टा की वह भी अपनी ही शान्ति के लिये, किसी पर ऐहसान के लिये नहीं । मोह में आकर स्त्री, पुत्र, पिता से गिड़गिड़ाये जो बात चाही, उसकी कुछ प्राप्ति कर लो । इतनी क्रिया हो जाने पर भी अथवा स्त्री, पुत्र का मन रखने के लिये उद्यम किया, इतने पर भी मैने केवल अपने में विकल्प का द्वन्द्व मचाया और कुछ नहीं किया । जो पुरुष करने की बात मन में सोचते हैं, मैंने किया, बच्चों को पढ़ाया, लिखाया, होशियार बनाया, हजारों रुपये उस पर खर्च किये, कदाचित् वह लड़का हो जाये प्रतिकूल जैसा कि प्राय: होता ही है, बिरला ही लड़का सेवा में निरत रहता है, तो उस प्रतिकूलता के प्रसंग में बड़ा क्लेश उठाना पड़ रहा है । किसी के

चित्त में समाया है मैंने इतना बड़ा किया, पढ़ाया, इसे तो मेरा जीवन भर ऐहसान मानना चाहिये था पर यह सब उलट कर चल रहा है । भैया ! सही ज्ञान रखता तो क्लेश न होता । मैंने जब के परिणाम से जब की चेष्टा की, अब के परिणाम से अपने में विकल्प कर रहा है । यह तो अपने उत्पादन के अनुकूल परिणमेगा । ऐसा ज्ञानी का भाव रहता है और वह दुःखी नहीं होता । दुःख दूर करने का उपाय एक ज्ञान है ।

भैया । विषयों में पड़कर तत्काल आकुल हुआ, भविष्य में भी आकुल रहेगा, पर भ्रमवश मौज मानता है । इससे शांति का पद तो नहीं बनेगा । सुख अन्यत्र है कहाँ? स्वयं यह आत्मसुख स्वरूप है, ऐसा निर्णय करके दु:ख की उल्टी चेष्टा का परित्याग कर दो, सुख होगा । कर्तृत्त्व का अभिमान मत करो । एक देहाती भाई का लड़का बड़े शहर में होस्टल में रहकर पढ़ता था । यह देहाती पिता कुछ रुपये लेकर, कुछ खाने का सामान लेकर गया यह सोचकर कि मैं ही सीधा पुत्र को दे आऊँगा । आज मैं खुद ही दे आऊँ । आया बोर्डिंग के बाहर उसने खबर दी । बोर्डिंग के भीतर गया, लड़का आ गया सामने, उसे कपड़े, भोजन सामग्री, रुपये सब दिये । पर उस लड़के के साथ उसके ५-६ मित्र थे । बाप के सामने ही उन्होंने पूछ लिया यह कौन है? लड़के ने कहा—यह मेरा कारिन्दा है, मेरा मुनीम है । बाप का चित्त बदल गया यह सुनकर । बाप ने मन में ठान ली कि अब यह मेरा लड़का नहीं है । उस लड़के ने अपनी शान ही तो रखी कि कहीं मेरे मित्र यह न समझें कि घुटनों तक धोती पहिने तनीदार कुर्ता पहने, पगड़ी ओढ़े यह इसका बेवकूफ बाप है । इसी शान के लिये तो कहा । सब अपनी-अपनी राग की वेदना में बिंधकर अपनी शांति के लिये चेष्टा करते हैं । यह बात ध्रुव सत्य है । विश्वास कर लोगे संकट दूर हो जायेंगे । विश्वास में ही न जमे तो जैसा होता आया है होता चला जायेगा ।

भैया ! जरा अपने आप पर भी दृष्टि दो । मैं किसी भी पर-प्राणी का उपकार भी वस्तुत: नहीं करता । वहाँ भी मैं अपनी परिणति की ही चेष्टा करता हूं । परोपकार करने में रहस्य क्या? वैसे तो यूं समझ में आना चाहिये कि कोई ऐसा बेवकूफ ही होगा जो दूसरे के लिये चेष्टा करे, परिश्रम करे अपने शरीर को तकलीफ दें, धन समय भी खर्च करे । समझ में तो सीधा यूँ आना चाहिये था, पर परोपकार में रहस्य की बात यह है कि इस जीव को चाहिये शांति ओर शांति प्राप्त होती हैं शांतस्वरूप निज आत्मतत्त्व के निकट बसे रहने में । ज्ञानी पुरुष शांति के प्रसंग में ऐसे उपाय की धुन में रहा करता है, किन्तु जिन-जिन क्षणों में इसकी दृष्टि अपने पर टिकी रहने में क्षम नहीं होती उन-उन क्षणों में यह पुरुष कहीं बेकार तो बैठा नहीं रह सकता, सो उस समय क्या करना चाहिये? यह रास्ते से उल्टा न चला जाये, कहीं विषयों की साधना में पतित न हो जायें उसका उपाय परोपकार है । परोपकार भी अपनी मलिनता मेटने के लिये और शांति प्राप्त करने के लिये किया जाता है । इसी कारण ज्ञानी पुरुषों के द्वारा पर का उपकार होता रहता है, परन्तु वस्तुतः मैं पर का उपकार नहीं करता और न उस क्रिया से शांति आती है ।

सब जीव शांति के लिये अपनी-अपनी चेष्टा किया करते हैं । कोई मेरा मित्र नहीं, कोई बैरी नहीं, यह

पदार्थ का स्वरूप है । हम व्यवहार से दूसरे की क्रिया निरखकर और अपने ही में भी यह सत् प्रकाश बनाये रहे कि प्रत्येक जीव अपनी ही शांति के लिये चेष्टा करता है, दूसरे का परिणमन नहीं करता । मंदिर में आते हैं । भगवान की मूर्ति के सामने एक, आध घंटे ध्यान लगाते, पाठ पढ़ते हैं और भगवान आपकी बात रंच भी सुनता नहीं और न अपनी जगह से उठकर तिराने के लिये आता है । फिर भी हमारी भक्ति में यह प्रताप है हम उनके गुणों के स्मरण से अपने आत्मतत्त्व की प्राप्ति करते हैं, शांत हो जाते हैं, भव-भव के संकट को नष्ट कर देते हैं ।

भैया ! पर का पर में अकर्तृत्व न होता तो जगत में अव्यवस्था हो जाती, कोई किसी का कुछ कर दिया करता होता तो प्रलय मची होती । किसी की सत्ता नष्ट हो जाती, कोई किसी को मिटा देता, जगत ही शून्य हो जाता, यह कुछ रहता नहीं । कोई किसी का कुछ कर नहीं देता । यह आत्मा अपना ही परिणमन करने में समर्थ है । यही सब विज्ञान अपने चित्त में उतारने के लिये प्रभु और गुरुओं की पंचपरमेष्ठी की उपासना में हम लग जाते हैं । हम सुख ही तो चाहते हैं तब जो सुखी होने का सीधा यथार्थ उपाय है उसका आलम्बन लें । मैं स्वयं सुखस्वरूप हूँ, परिपूर्ण हूँ, मेरे में कुछ अधूरापन ही नहीं । किसी से क्या आशा रखना, ये सब विकल्पों को छोड़कर विश्राम पाऊँ और अपने में अपने आप अपने लिये सुखी होऊँ । यह ज्ञाता मोह त्यागकर जितना अपने स्वरूप में आयेगा उतना ही विश्राम पायेगा, ऐसा करना अपने आपमें सुखी होने का उपाय है ।

प्रत्येक पदार्थ में ६ साधारण गुण होते हैं—अस्तित्त्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशत्व, प्रमेयत्व । इन ६ गुणों का बना पदार्थ सत् ही है । अस्तित्त्व गुण के प्रताप से पदार्थ सत् रहता, किन्तु यदि अस्तित्त्व गुण यह स्वच्छता बरतने लगे कि हम किसी रूप रहें, किसी परपदार्थ रूप रहे सब पदार्थ रूप रहें, हमें तो अस्तित्त्व का काम मिला है, ऐसी स्वच्छन्दता नहीं चल सकती । क्योंकि उसका प्रतिशोध करने के लिये वस्तुत्व गुण है । वस्तुत्व गुण के कारण पदार्थ स्वरूप से है पर के स्वरूप से नहीं है । उसमें ही अर्थ क्रिया हो सकती है । ऐसे भाव को लेकर वस्तुत्व गुण का यह भी लक्षण करा है जिसके प्रताप से अर्थ क्रिया हो वह वस्तुत्व गुण है । अब यह वस्तुत्व गुण यह स्वच्छन्दता बरतने लगे, मेरा तो काम होना है, परस्वरूप से नहीं होना है । मे रंच नहीं परिणमूंगा, मैं अन्दर बाहर नहीं आऊँगा, मैं तो ध्रुव परिणति ही रहूंगा । अपने स्वरूप से हूं, पर से नहीं । यह स्वच्छन्दता नहीं चल सकती । क्योंकि साथ ही ६ गुण भी तन्मय है । ऐसी ६ शक्ति के प्रताप से यह पदार्थ निरन्तर परिणमता रहता है । किसी भी पदार्थ का एक क्षण भी परिणमन बन्द नहीं होता । पदार्थ का ऐसा स्वरूप ही है । लो अब तो ६ गुण को बहुत बड़ा अधिकार मिल गया । यह पदार्थ को परिणमाता रहें । अब यह स्वच्छंद बन जाये । मुझे तो यह अधिकार मिला है कि मैं अपने को परिणमाता रहूं, चाहे किसी रूप परिणमाऊँ, जैसी मर्जी हो तैसा बनाऊँ ऐसी स्वच्छन्दता वस्तुत्व गुण नहीं कर सकता, क्योंकि साथ में अगुरुलघु गुण भी तन्मय है । इस अगुरुलघु गुण का काम है पदार्थ को न गुरु बनने

देना, न लघु बनने देना अर्थात् पदार्थ गुरु तब ही तो बन सकेगा जब पदार्थ में अन्य का गुण या पर्याय आ जायेगा । पर ऐसा गुरुत्व नहीं है अर्थात् किसी परपदार्थ से कोई गुण अथवा पर्याय किसी पदार्थ में आता नहीं । और यह पदार्थ लघु तब बने जो कुछ इसमें शक्ति है इसमें से निकलने लगे । परन्तु ऐसा भी कभी नहीं होता । अगुरुलघु गुण ने सब अव्यवस्था दूर कर दी । प्रत्येक वस्तु इस गुण के प्रताप से किसी न किसी आकार में रहती । और प्रदेशत्व गुण के कारण पदार्थ किसी न किसी ज्ञान के द्वारा ज्ञेय रहता है । इस श्लोक में पदार्थ के उन ६ साधारण गुणों में अस्तित्त्व गुण का समर्थन करता हुआ, अपने आपमें समा जाने के लिये शिक्षा दी है । इस मेरे आत्मा से कुछ भी चीज बाहर नहीं जाती और न किसी पदार्थ से कोई चीज मुझमें आती । प्रत्येक पदार्थ परिपूर्ण स्वतन्त्र है । भले ही विभाव परिणमन का निमित्त पाकर विभावरूप परिणमे, परन्तु उस स्थिति में भी यह उपादान अपने में अपनेरूप परिणमने की शक्ति लेकर नहीं परिणमता । जो मुझमें है, वह कहीं जाता नहीं, जो मुझमें नहीं है वह कभी आता नहीं । जो मुझमें है उसका दुरुपयोग कर लो अथवा सदुपयोग कर लो, इतने तक ही हमारी करतूत है । लेकिन पर को गुणपरिणमन सौंप दूं, और किसी पर से कुछ ले लूं यह नहीं हो सकता । जो यह मानता है मुझे घर से, धन से इस प्रशंसा से सुख होगा, यह कैसे हो सकता? मैं किसी को सुखी दु:खी कर दूं मैं किसी को समर्थशाली बना दूं यह कैसे हो सकता? सब जीव अपने-अपने परिणाम करते हैं और अपने-अपने परिणाम भोगते हैं । मैं किसी दूसरे का कुछ करता हूँ अथवा पर का सुख भोगता हूँ यह कल्पना करना अपने आत्मप्रभु पर अन्याय करना है । एक घर में ६-७ भाई थे । देववश वे गरीब हो गये, खाने को भी तंगी हो गई । एक बार वे सब अपनी मौसी के घर गये, वहाँ १०-१५ दिन अच्छे कट जायेंगे । पहुंच तो गये । पर उनकी मौसी कंजूस थी । और जब किसी पर गरीबी आ जाती है तो गरीबी में पूछ कम रहती है । धनी रिश्तेदार को सब पूछते हैं । मौसी बोली—बेटा ! तुम लोग अच्छे आ गये, बताओ क्या-क्या खाओगे? लड़के बोले, जो कुछ खिलाओ पकवान पूरी लड्डू । गांव के बाहर तालाब था । नहाने चलें गये, दो घंटे नहाने में लगे । वहाँ से मन्दिर में गये । एक घंटा लगा । इतने में मौसी ने उन सब भाईयों के कपड़े आदि एक बनिये के गिरवी रखकर उन पैसों से आटा, घी आदि खरीदकर भोजन बनाया । वे सब भोजन करने आये । बड़े मिष्ट भोजन थे । लड़के भोजन करते जायें और कहते जायें मौसी ने कितना अच्छा भोजन बनाया है। मौसी ने कहा, खाओ तुम्हारा ही तो माल है । जब छककर खा चुके, कपड़े पहनने गये तो कहा—मौसी कपड़े तो हैं नहीं । मौसी बोली—हमने कहा था—खाते जाओ तुम्हारा ही तो माल है । तुम्हारे कपड़े अमुक बनिये के यहाँ गिरवी रख दिये । जैसे लड़के खा तो रहे थे अपना माल पर, इस भ्रम से कि हम मौसी का भोजन कर रहे हैं, सुख मान रहे थे । इसी तरह हम भोग तो रहे हैं अपना सुख, अपने आत्मा का सुख, पर मान रहे हैं विषयों का, इज्जत का सुख । जो मुझमें है मुझसे जाता नहीं, जो मुझमें नहीं है वह कहीं बाहर से आता नहीं ।

गहरी खोज के बाद.....

''सुख''
मिला यहाँ....

इस श्रद्धा में :—

१. मेरी चेष्टा का फल मुझ में होता है अन्य में नहीं । बाह्य पदार्थ में हम कुछ नहीं कर सकते, केवल अपने ज्ञान में ही कर सकते हैं व करते है ।

२. मैं अपने ही द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव से हूँ, पर के से नहीं ।

३. मैं: एक हूँ, अद्वैत हूं, शुद्ध हूँ, चैतन्यस्वरूप वाला हूँ, स्वतन्त्र हूँ पर-पदार्थ से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है । आत्मा का अकेलापन विचारूं । देह भी पर है ।

४. किसी आत्मा का किसी आत्मा से कोई सम्बन्ध नहीं, राग का राग से सम्बन्ध है ।

५. मैं तो अकिञ्चन हूँ मेरा कुछ नहीं है ।

६. मुझे परेशान करने वाले, दुखी करने वाले कोई बाह्य चेतन अचेतन, पदार्थ नहीं है ।

७. मेरी जितनी भी अवस्थायें हैं उनमें ले जाने बाला मैं ही तो हूँ, अत: मैं ही अपना गुरु, अपना नेता हूँ।

८. अपने ही भावों से अपना कुछ होता है ।

९. एक वस्तु का दूसरी वस्तु से कोई सम्बन्ध नहीं । सम्बन्ध निषेध के अतिरिक्त शांति का कोई उपाय नहीं ।

१०. ज्ञान न तो ज्ञेय को कुछ करता ही है और न उसको भोगता ही हैं ।

११. मैं अनाथ हूं कोई भी मेरी रक्षा करने में समर्थ नहीं ।

१२. पहले अपने आत्मतत्त्व पर दया करूं, अपने को संभालूं, बाद में चाहे जो प्रवृत्ति करूं।

१३. और की तो बात जाने दो, ममतामयी मां की गोद में पड़ा हुआ बालक भी काल का ग्रास हो जाता है और मां उसको बचाने में असमर्थ होती है ।

१४. दु:ख 'यह मेरी है या वह मेरी थी' इस विकल्प में है, पदार्थ में नहीं । वस्तु से मोह हटा लो तो उसको न पाने अथवा खोने का दु:ख नहीं होगा ।

१५. तृष्णा के बढ़ाव में दु:ख है और घटाव में सुख। इच्छा से चिन्ता उत्पन्न होती है और जहां चिन्ता हुई क्लेश अनिवार्य है।

१६. जैसे-जैसे विषयाशा बढ़ती जाती है, बंधन भी बढ़ता जाता है। जितना कम सम्बन्ध होगा उतनी ही कम चिन्ता होगी।

१७. असन्तोष ही दरिद्रता है । संग्रह करने से सुख नहीं । सुख तो आशा का अभाव है । जब आशा नष्ट हो जाती है तभी सिद्धि होती है ।

१८. किसी से कुछ न चाहे (यहाँ तक की मोक्ष भी नहीं) क्योंकि मोक्ष जैसी दुष्प्राप्य वस्तु भी तो अपनी आत्मा में बसे हुए परमात्मा की कृपा से ही प्राप्त होगी।

१९. सुख के अर्थ परपदार्थ की प्रतीक्षा करना सुख की हत्या करनी है । परपदार्थों में आशा करने से परपदार्थ मिलते भी नहीं और मुक्त में हम दुःखी भी बने रहते है ।

२०. अपनी इच्छा के विपरीत परिस्थिति उपस्थित होने पर भी मैं शान्त बना रहूं । क्रोध के कारण मिलने पर शांति रखना ही शांति है ।

२१. शांति का आधार तो इच्छा का अभाव है ।

२२. मैं संसार में तो बसूँ (नहीं तो जाऊँ भी कहां) परन्तु संसार को अपने में न बसाऊँ ।

२३. यह विषयभोग बड़े सरल दिखते हैं, पर बड़े महंगे पड़ेंगे ।

२४. अन्तर्दृष्टि करूं तो तत्त्व मिले, बाह्यदृष्टि होने पर तो दुःख ही मिलेगा ।

२५. शांति तो तत्त्व में ही है । तत्त्व—अर्थात् ऐसा ज्ञान होना जिसमें राग द्वेष का लेश भी न हो ।

२६. 'स्व' का एकपन, एकाकीपन ही मंगल है, वहो आत्मा की रक्षा करने के लिये दुर्ग है।

२७. अपने स्वभाव की और ढला हुआ स्वरूप ही शरण है ।

२८. यदि ज्ञान में उपयोग हो जाये तो फिर बाह्य में कुछ होता रहे, मेरा कुछ बिगाड़ नहीं कर सकता।

२९. भगवान् आंखों से नहीं दिखता, परन्तु राग, द्वेष, मोह के अभाव में आत्मानुभव होने पर परमात्मा अनुभव हो जाता है ।

३०. मैं तो ज्ञाता दृष्टा स्वरूप हूँ, अजन्मा है, अमर हूँ, बस मेरी तो यही स्थिति हो कि मैं केवल ज्ञानमय आत्मा तो रहूं, पर और कुछ न रहे ।

३१. स्वभाव विकास का कारण तो निज मग्नता ही है ।

३२. जानने मात्र की दशा में अर्थात् ज्ञानदशा में दुःख नहीं ।

३३. जिस रूप जो पदार्थ परिणमता है परिणमने दूं । मोही बनकर क्लेश को प्राप्त मत होऊँ । सदैव अपनी आत्मा में ही रत रहूँ ।

३४. स्वास्थ्य अर्थात् स्व में स्थिति के बिना निर्मलता नहीं आ सकती, कल्याण नहीं हो सकता ।

३५. चारों ओर घूमने वाले अपने उपयोग को यदि सब ओर से खींचकर आत्मा में केन्द्रित कर दूं तो हें (आत्मा) इतना चमत्कृत हो जाऊँगा कि कर्मों को जलाकर एक दिन परमात्मा अवश्य बन जाऊँगा।

३६. जगत की बात छोड़ूं, अपने को ही अपने अनुकूल बनाऊँ । अपना लोटा छानूँ, जगत का कुआं छानने से कोई लाभ नहीं ।

३७. आशा करते-करते तो अनन्तकाल बीत गया, अब तो इस नैराश्यमय ज्ञान के अनुभव की ही चटाचटी लगाऊँ ।

३८. मैं सामान्य पर ही दृष्टि लगाऊँ मुझे कुछ न सुहावे, कुछ न रुचे, किसी भी पदार्थ से कुछ प्रयोजन न रखूँ, एक परमात्मतत्त्व का ही लक्ष्य करूँ ।

३९. संसार की जो परिस्थिति है कही नहीं जाती ! सबको एक बार भुलाकर ज्ञानपुञ्ज आत्मा का तो अनुभव हो ।

४०. यदि आत्मरमण की वस्तु मिले तो पर-रमण स्वयमेव ही छूट जायेगा । बस यह समझ लूँ कि सब कुछ छोड़ने के बाद किसमें उपयोग लगाऊँ? क्योंकि उपयोग कहीं न कहीं लगेगा ही ।

४१. सुख तो अपने में ही हे, बाह्य में ढूँढना व्यर्थ है ।

४२. जहाँ आशा और प्रतीक्षा होती है वहाँ त्याग नहीं । यदि आत्म कल्याण की भावना है तो आत्मा का हित हो यही धुन रहे ।

४३. जीवन के अर्थ है—निराकुलता होना, बेफिक्री होना, संतोष होना, आत्मस्थिरता होना ।

४४. जो परिस्थिति इस समय मेरी है उसमें ही सन्तुष्ट रहूं । यदि ऐसा नहीं है तो भविष्य में होने वाली स्थिति में तो सन्तोष होना असम्भव ही है ।

४५. अपनी आत्मा में उत्साह रखना, बल रखना, जैसी भी परिस्थिति हो प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार व सहन कर लेना—यही सुख और शांति का मार्ग हे ।

४६. मैं ऐसा बल प्राप्त करूँ कि जो संयोग व जो सम्पत्ति, वैभव प्राप्त हुआ है उसमें मेरा ममकार अर्थात् ये मेरे हैं ऐसी कल्पना ही न हो ।

४७. राग द्वेष, मोहरहित परिणाम होना यही महान यज्ञ है, यही पूजा है, यही स्वाध्याय है।

४८. ठगा जाना बुरा नहीं ठगना बुरा है ।

४९. अपनी करतूत से अरुचि हो जाये, बस यही करना है और कुछ नहीं ।

५०. दुःख उपस्थित होने पर भी ज्ञान से मेरे उपयोग की च्युति न होवे ।

५१. बड़प्पन मोह बढ़ाने में नहीं हैं । बड़प्पन तो मोह के कम होने नाश होने से है ।

५२. सुख तो ज्ञान और त्याग का फल हैं ।

५३. परमात्मा की उपासना करने का अर्थ है अपनी आत्मा की उपासना करना ।

५४. व्यवहार के साधन द्वारा व्यवहार से मुक्ति पाकर निश्चय में प्रवेश करूँ ।

उपर्युक्त श्रद्धा के बल पर ही मैं अपने द्वारा, अपने में, अपने लिये स्वयं सुखी होऊँगा ।

—मूलचन्द जैन